# एक कहानी और एक गीत

तेजी ग्रोवर

कोई एक महिला थी जिसे एक कहानी मालूम थी। उसे एक गीत भी याद था। लेकिन उसने कभी किसी को न वह कहानी सुनाई थी, न गीत।

कहानी और गीत उसके भीतर बन्द थे, और बाहर आना चाहते थे, भाग निकलना चाहते थे। एक दिन रात में सोते समय उस महिला का मुँह खुला रह गया और मौका देख कहानी बच निकली, बाहर आन गिरी, जूतों की एक जोड़ी में बदल गई और घर के बाहर जा बैठी। गीत भी निकल भागा और आदमी के कोट जैसी किसी चीज़ में बदलकर खूँटी पर लटक लिया।

उस महिला का पति जब घर लौटा, उसे जूते और कोट दिखाई दिए, और तुरन्त उसने अपनी पत्नी से पूछा, "कौन है घर में?"

"कोई भी नहीं," महिला बोली।

"फिर ये कोट और जूते किसके हैं?"

"मुझे नहीं मालूम," उसने उत्तर दिया।

वह आदमी अपनी पत्नी के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसे अपनी पत्नी पर शक हुआ। जिस पर उनके बीच खूब कहा-सुनी हुई और वे भयंकर झगड़ा करने लगे। घरवाला गुस्से से पगला उठा, उसने अपना कम्बल उठाया, और रात बिताने हनुमान जी के मन्दिर में चला आया।

वह महिला सोचती रह गई, लेकिन

उसे कुछ समझ में नहीं आया। अकेली लेटकर वह रात में सोचती रही: "आखिर किसके हैं ये जूते और यह कोट!" दुख और असमंजस में उसने लालटेन बुझाई और उसे नींद आ गई।

शहर-भर की लालटेनों की बत्तियाँ जब बुझ जातीं, तो वे रातभर गपशप करने हनुमान जी के मन्दिर चली आतीं। उस रात भी शहर की सारी बत्तियाँ वहाँ थीं - बस एक को छोड़कर। वह काफी देर से आई। दूसरी बत्तियों ने पूछा, "आज इतनी देर से क्यों आई?"

"हमारे घर में आज पति-पत्नी का झगड़ा जो चल रहा था," आग की वह लौ बोली।

"क्यों झगड़ रहे थे वे?"

"पति घर पर नहीं था तो जूतों की एक जोड़ी घर के बाहर आ बैठी और अन्दर की एक खूँटी पर एक मर्दाना कोट आकर टंग लिया। पति ने पूछा कोट और जूते किसके हैं। पत्नी बोली वह नहीं जानती। इस बात पर वे झगड़ने लगे।"

"कोट और जूते आए कहाँ से थे?"

"घर की मालकिन को एक कहानी मालूम थी और एक गीत। वह न तो किसी को कहानी सुनाती है, न गीत। कहानी और गीत का दम घुट रहा था, तो वे बच कर भाग निकले और कोट और जूतों में बदल गए। वे बदला लेना चाहते थे। औरत को तो पता ही नहीं चला।"

कम्बल ओढ़कर लेटे आदमी ने लालटेन की पेश की हुई दलील को सुना। उसका शक जाता रहा। जब वह घर वापिस पहुँचा तो सुबह हो चुकी थी। उसने अपनी पत्नी से उसके भीतर की कहानी और गीत के बारे में पूछा। लेकिन वह तो उन्हें भूल चुकी थी। "कैसी कहानी, कौन-सा गीत?" वह बोली।

यह कहानी कन्नड़ और अँग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध लेखक ए.के. रामानुजन के

ए.के. रामानुजन

निबन्ध 'एक अन्य विधान की ओर: महिलाओं की कहानियाँ' से यहाँ हिन्दी में अनुवाद कर मैंने ली है। मूल कहानी कन्नड़ भाषा की लोक कथा है।

इस कहानी की व्याख्या करते हुए रामानुजन लिखते हैं कि यह कहानी

बताती है कि हमें कहानियों को उनकी घरेलू बानगी में क्यों सुनाना चाहिए। कहानियाँ इसलिए सुनाना चाहिए क्योंकि वे सुनाई जाने को तरस रही होती हैं। जब वे घूमती नहीं हैं, तो उनका दम घुट जाता है। अनकही कहानियाँ रूप बदल लेती हैं, और बदला लेती हैं। वे सड़-गल कर कटुता और सन्देह का माहौल पैदा करती हैं, जैसे इस कहानी के पति-पत्नी के बीच। वे आगे लिखते हैं कि हम गौर करें कि सभी कहानियाँ दरअसल जानदार चीज़ें हैं, वे रूप बदल सकती हैं। कहानियों और आग की लपटों को कभी बुझाया नहीं जा सकता। वे रूप बदल लेती हैं या हनुमान जी के मन्दिर में चली जाती हैं - और बड़े रोचक परिणाम निकलते हैं उनकी आवाजाही से।

हम इसी लीक पर आगे चलते जाएँ, तो इस कहानी से और भी कई स्वर हमें सुनाई देंगे। हमें शायद यह भी याद आ जाएगा कि हमें बचपन में कहानियाँ कौन लोग सुनाया करते थे। अगर हम उन भलीमानस महिलाओं के पास न होते, तो हमारा क्या हश्र होता? और उनका क्या होता जिनके भीतर वे अनकही कहानियाँ सड़-गल जातीं, और क्या मालूम वे किस-किस से क्या-क्या बदला लेतीं! उस स्नेह और प्रेम का क्या होता, उस ममत्व का, उस स्त्री-तत्व का जो किस्सागोई के व्यापार में ही व्यक्त होता है? कई जगह पिता लोग या दादा-नाना लोग भी कहानी सुना दिया करते होंगे, या फिर शहर-गाँव का कोई मंजा हुआ कलाकार। लेकिन घर के माहौल में कमोबेश यह काम सदियों से स्त्रियाँ ही करती आई हैं। मुझे ज़रा भी ताज्जुब नहीं होता जब मैं उस फ्रांसीसी उपन्यासकार मार्गरीत ड्यूरास का वह वाक्य उनकी एक कहानी में बार-बार पढ़ती हूँ-- "औरतें ही साहित्य हैं।" मेरी दादी का पोपला मुँह, उनकी त्वचा का बूढ़ा मुलायम स्पर्श, और सिक्ख गुरुओं की वे साखियाँ जो वे मुझे और मेरे भाई को सुनाया करती थीं, इन सब पर मानो समय का पानी चढ़ ही न पाया हो। ऐसा नहीं है कि उन घनघोर आध्यात्मिक कहानियों से हमारा अन्तस सदा के लिए धुलकर साफ हो गया हो। या फिर नानक का तेरह सेर का तोल 'तेरा-तेरा' में बदल जाने की बात सुन कालान्तर में हम

मार्गरीत ड्यूरास

भाई-बहन कोई रब्ब के प्रेमी हो गए हों। लेकिन कुछ तो हुआ ही होगा कि दूसरे जन में आस्था के सुन्दर रूप देख हमारी सारी पढ़ाई-लिखाई धरी की धरी रह जाती है।

होशंगाबाद के दिव्य ज्योति घाट की ओर जब शहर-गाँव की बाइयाँ गेहूँ के ज्वारे अपने सिर पर धरे ले जा रही होती हैं, तो उनके गीतों के उजास में वह मामूली-सी घास कैसी कौंध-कौंध जाती है दृश्य में। मिस्त्र देश के वनस्पति खुदा ओसाइरिस और उसकी बहन आइसिस की यात्रा! ऐसा अनुभव कि त्वचा ही भूमि में बदल जाए और उन्हें देख देह में ही अँखुए फूट पड़े हों।

जब मुझे पता चलता है कि इस गेहूँ के ज्वारे की प्रथा के पीछे भी एक कहानी है, तो परम्परा की अनन्त पर्तों में से एक का स्पर्श महसूस हो जाता है। बोनी से पहले गेहूँ के बीजों का परीक्षण करने की प्रेरणा - शायद यही इस प्रथा का मर्म है, शायद यही उसका बीज। ओसाइरिस पानी में डूब जाएगा और समय पाकर खेतों में चहों ओर सोना लहराने लगेगा। फिर वह काट लिया जाएगा, उसकी मृत्यु से भरण-पोषण होगा, बचे हुए बीज एक बार फिर मिट्‌टी में सोकर उठ खड़े होंगे। यही लोक में प्रचलित कथाओं का स्वभाव भी होगा, अनुमान कर सकते हैं। सुनाई गई कहानियाँ चुक नहीं जातीं। उनके बीच की खाली जगहों पर सुनने वाले की कल्पना और रचना के लिए अवकाश निकलता चला आता है।

आश्चर्य कैसा कि भारत और अन्य कई देशों में राम-कथा के अनन्त रूप

ओसाइरिस और उसकी बहन आइसिस

हैं, सहस्त्र 'रामायण' हैं। कन्नड़ भाषा में 'सीता' का अर्थ छींक है तो राम की किसी कथा में रावण की छींक से सीता पैदा होगी, उसकी पुत्री। वह त्रासद चरित्र में बदल जाएगा जिसके मन में अपनी बेटी के प्रति मोह पैदा हो गया हो। किसी एक राम-कथा में सीता को वन में न ले जाना चाहते हुए राम को सीता अन्ततः यह याद दिलाएगी कि अभी तक ऐसी कोई रामायण नहीं है जिसमें सीता वनवास को न गई हो। वाल्मीकि लिखें ज़रूर, लेकिन उनके लिखे हुए में भी कुछ और लिखे जाने की जगह है। जबकि असंख्य कण्ठों में सदियों से स्थित वेद जस के तस ही रहे आए और वैसे ही लिख दिए गए। इसलिए यह ज़रूरी नहीं कि मौखिक बदलता है और लिखित लिखा रहता है, बदलता नहीं। और इस बात में भी अचरज कैसा कि मौखिक परम्परा में स्मृति उतनी क्षीण नहीं है जितनी उस अन्य परम्परा में, जिसमें कवि कागज़ के टुकड़े ही से अपनी कविता का पाठ कर पाता है, और लाइट चली जाने पर कार्यक्रम ठप्प हो जाता है।

## II

सुब्रह्मण्यम ने जब मुझे बताया कि तूलिका प्रकाशन की पुस्तक *कुश्ती-मस्ती* जो कि पंजाब की एक लोक कथा की शक्ल में छपी है, बुन्देलखण्ड में भी सरेआम सुनने को मिलती है, तो मुझे एक बार फिर लगा - जो कहानी किसी के पेट में नहीं पचती,

वही लोककथा भी है। वह चलती रहती है, रास्ते में पहाड़ हों, नदी, समुद्र या फिर देश। यूनान की वह कहानी जिसमें राजा ईडिपस इसी भविष्यवाणी के डर से अन्ततः अज्ञानवश अपनी माँ से शादी कर बैठता है, उसके स्त्री-केन्द्रित आख्यान भारतीय मिथकों और लोक कथाओं में मिलते हैं।

इन दोनों में समान बात यह है कि भविष्यवाणी सुनकर ही भयभीत पात्र या किरदार उसकी काट ढूँढ़ने हेतु सावधानी से कुछ कदम उठाता है। और यही के यही कदम उसे ठीक उसी भविष्यवाणी की ओर लिए जाते हैं। इडिपस जब इस भविष्यवाणी से अवगत होता है कि वह अपने पिता की हत्या करेगा और माँ से शादी, तो वह अपना राज्य छोड़ किसी दूसरे राज्य का रुख करता है। रास्ते में वह एक घमण्डी यात्री का वध कर देता है जो उसे ललकार रहा था। अपने गन्तव्य पर पहुँचने पर उसे पता चलता है कि इस जगह के राजा की मृत्यु हो चुकी है और राज्य में प्रविष्ट होने वाले

पहले व्यक्ति, यानी ईडिपस को महारानी से शादी कर राज्य सम्भालना होगा।

यह उसे बहुत बाद में पता चलता है कि जिसका वध उसने किया था वह उसका अपना ही बाप था, और कि महारानी योकास्टा असल में उसकी अपनी जननी थी। असली माँ-बाप ने भी इसी भविष्यवाणी को सुनकर अपने पुत्र को तज दिया था, लेकिन जिस गड़रिए को ईडिपस को ठिकाने लगाने का काम सौंपा गया था, उसके मन में दया उमड़ आई थी।

योकास्टा

लेकिन खास बात यह है कि वे यात्राएँ जो कहानी के सन्तप्त किरदार करते हैं, वे दरअसल खुद ही उस कहानी के रूपक भी बन चुके हैं, जो खुद को बचाने के लिए भाग निकलती है। कहानी खुद भी भविष्यवाणी से डरती है क्योंकि भविष्यवाणी अटल सच होने का दावा करती है जबकि कहानी झूठ की ऐसी निर्मिति है जिसमें सच झिलमिलाता रहा करता है। इस 'झूठ' का एक नाम 'फन्तासी' है। मुझे 'फन्तासी' में और उस गड़रिए में एक साम्य नज़र आने लगा है जिसने ईडिपस पर दया की थी। 'फन्तासी' हम पर कृपा करती है और हमें जीवन की हकीकत से उठाकर या बचाकर अन्ततः हकीकत को और हकीकत के अर्थ को ही हमारे लिए बदल देती है। मूल रूप से ग्रीक में fantasy का अर्थ है 'दृश्य करना' या फिर बाद में 'कल्पना करना, दृश्य देखना' और 'दिखाना', और ऑक्स्फर्ड शब्दकोश के अनुसार "जो चीज़ें असल में नहीं हैं, उनका मानसिक चित्रण।"

जब हम रूसी फिल्मकार तारकोवस्की की फिल्म में 'सोलारिस' नाम की भयावह फन्तासी में पहुँचते हैं, तो सोलारिस पर पहुँचे मनुष्य एक छोटे-से गमले में उगे पृथ्वी के पौधे को बड़ी हसरत भरी निगाहों से देखते हैं। उस फन्तासी में भी अचानक हमें पृथ्वी पर उगे पौधों को देख पाने का अर्थ समझ में आने लगता है। एक

रूसी फिल्मकार तारकोवस्की
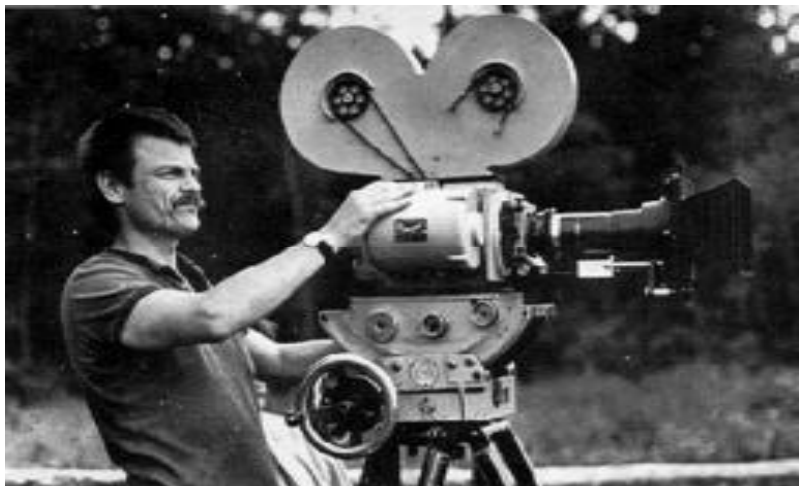
निरुपाय, अकेला पौधा, एक अपरिचित और भयावह माहौल में पड़ा हुआ। कहीं यह पृथ्वी का दृश्य ही तो नहीं है, जिसमें हम कुछ समय बाद हरियाली के एक नन्हें से टुकड़े को हसरत भरी निगाहों से देख रहे होंगे? यानी 'फन्तासी' हमें यथार्थ का एक ऐसा दर्शन करा जाती है जो हमें यथार्थ से कतई नहीं हो पाता। फन्तासी यथार्थ के साथ हमारे सम्बन्ध को बदल देने का एक टोटका है, एक घरेलू इलाज जिसे हम समकालीन ऊहापोह में भूलते चले जा रहे हैं।

## III

कहा जाता है कि किसी व्यक्ति के बुद्धिमान होने की पहचान यह भी है कि उसमें श्रोता-बुद्धि है या नहीं। कौन बात किससे कहनी है, कैसे और कब कहनी है, इसका बोध। और जो कहानी सुनाने वाले के सामने हुंकारा नहीं भरता, उसे भी कहानी सुनना नहीं आता, ऐसा सुनने में आता है। हुंकारिया
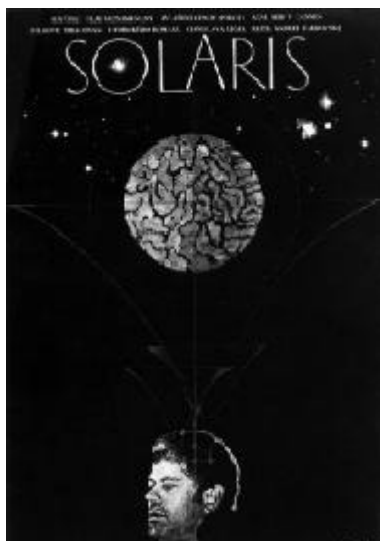
ही तो किस्सा कहने वाले की साक्षात प्रेरणा है, और उसकी अहमियत किसी पाठक से कम नहीं है, ज़्यादा ही है, क्योंकि वह सुनते समय कहानी का रुख बदल देने की शक्ति रखता है। जो कहानी सुनाता है, उसकी श्रोता बुद्धि इस बात में है कि वह कब, कैसे, और किसे अपनी कहानी सुनाता या सुनाती है। कोमल कोठारी (राजस्थान के लोक-कला पुरुष 'कोमल दा') जो लोक-संगीत और लोक कथाओं के अद्‌भुत धनी और सेवक थे, हमें अपने बचपन की एक कहानी याद करके बताते हैं। वे शायद उनकी मौसी रही होंगी जो बचपन में पाँच-छः बच्चों को कहानी सुनाया करती थीं, जिनमें कोमल दा भी थे। एक चिड़ा-चिड़ी कुएँ की पुली से लटकती रस्सी से झूला झूलते रहते थे। एक दिन झूलते-झूलते वे दोनों कुँए में जा गिरे। इस कहानी ने नन्हे कोमल पर बहुत गहरी छाप छोड़ी थी, फिर भी कई वर्ष तक उन्हें इस कहानी की कोई सुधि नहीं थी। लोक कथाओं पर काम करते-करते उन्हें अचानक इस कहानी की याद हो आई। इतना वक्त गुज़र जाने के बाद इस कहानी के अन्त को कोमल दा फिर से गुनने बैठ गए। तभी उन्हें सूझा कि कहानी के अन्त में कुँए में गिरे चिड़ा-चिड़ी दरअसल मरते नहीं हैं, उड़ जाते हैं। उनकी मौसी कहानी का अन्त और अर्थ खोलकर बच्चों के सामने नहीं रख देती थीं। न कोई सीख या सबक सिखाना कहानी का ध्येय होता था। लोक कथाएँ हमें एहसास कराती हैं, किन्हीं अर्थों का बोध, लेकिन ज़रूरी नहीं यह एहसास कहानी को सुनते समय हो - कहानी के गहरे अर्थ का बोध जीवन में किसी भी समय हो सकता है।

कोमल कोठारी

अपने बचपन को याद करते हुए कोमल दा आगे कहते हैं कि कहानियाँ सुनाते समय बड़े लोग बच्चों से कोई सवाल-जवाब नहीं करते थे, न उनसे कहते थे कि वे अगले दिन नाश्ते के समय वही कहानी वापिस उन्हें सुनाएँ। जब बच्चे ऐसे प्रश्नों का जवाब देते हैं - बताओ, शेर ने क्या किया इत्यादि, तो बड़े लोग प्रसन्न हो जाते हैं कि चलो बच्चों ने कुछ सीखा तो। सुनना मात्र ही पर्याप्त सुख था, उन्हीं लोगों से बार-बार सुनना जिनकी उपस्थिति हर विपत्ति से उन बच्चों को हर शाम बचा ले जाती थी।

कोमल दा के कथा-श्रवण और वाचन के अनुभव पर गौर करें तो

हम पाएँगे कि कहानी से कभी बोझा ढोने का कोई आग्रह नहीं किया जाता। सुनने वाले का चित्त प्रसन्न होता है, सुनाने वालों के लिए सुनने वालों की आँखों की चमक और उनका हुंकारा मात्र पर्याप्त हैं। अर्थ तो जीवन भर खुलते रहेंगे, यही उनका स्वभाव है।

दूसरी बात सुनाने और सुनने वालों के बीच का वह सम्बन्ध है जो दोनों ही के लिए आनन्द-कणों का संचयन करता चला जाता है। दोनों का ही कल्पना-जगत, सुख-दुख, सहने, सहेजने, और सान्निध्य भाव स्पन्दित हो उठते हैं। कठिन मनोभाव जैसे प्रेम और ईर्ष्या; कठिन अनुभव जैसे प्रियजनों की मृत्यु, और अलावा इसके कहते और सुनते समय मनुष्येतर जगत के सूक्ष्म संवेदन से श्रोता और वक्ता का मिलाजुला साक्षात्कार। जिस आनन्द का संचार कहानी कहने-सुनने से होता है, उसी से अर्थ की गहन अनुभूति किसी भी क्षण प्रस्फुटित हो उठती है। चूल्हा, रसोई, बिस्तर, रात की मद्धिम रोशनी, अपने से बड़ी किसी स्नेहमयी देह का स्पर्श, ये सब भी ज़रूर हिस्सेदारी करते होंगे। जहाँ इन सबके अभाव में कहानी कहना हो, वहाँ क्या उतनी ही सहजता से कठिन प्रसंगों को छेड़ा जा सकता है? यह बात विचार करने लायक है।

ए.के. रामानुजन ने जिस स्वभाव से भारत की लोक कथा निधि का संचयन किया है, उनमें कई कहानियाँ ऐसी हैं कि जिनका वाचन करना कोई आसान काम नहीं है। ये कहानियाँ हमारे एकाधिक आधुनिक आग्रहों को बुहारकर एक ओर कर देने की ताकत रखती हैं। अपने सन्दर्भों से हटकर इस संचयन की कई कहानियाँ अगर हम सुनाने चलें तो वे हमसे ऐसी श्रोता-बुद्धि की माँग करती हैं जिसकी रोज़मर्रा जीवन में हमें शायद ही कभी ज़रूरत पड़ती हो। लेकिन यह संचयन नेशनल बुक ट्रस्ट से छपा है। कोई भी लेकर, उठाकर पढ़ सकता है। रामानुजन ने संकलित कथाओं की लतरों को पूरे ऐश्वर्य से फैल जाने दिया है, अलग-अलग अंचलों की शैलियों, मान्यताओं और वर्जनाओं को एक गुलदस्ते में संजोती हुई। इस कथा सृष्टि में कुछ

भी घट सकता है, और किसी 'सुशिक्षित' पाठक को घनघोर असमंजस में डाल सकता है, जो अंचलों में चल रही जीवन शैलियों से अनभिज्ञ है। और साथ ही साथ अपने जीवन की अनेक विसंगतियों से भी। हम भले ही उन क्षीण रेखाओं के अभ्यस्त न हों जो जीवन और मृत्यु के बीच इन कहानियों में हमें मिलती हैं, 'नैतिक' और 'अनैतिक' के बीच, हिंसा और करुणा के बीच।

हम कोशिश कर देखते हैं कि कठिन प्रसंग क्या-क्या हो सकते हैं। क्या ऐसी कहानियाँ जो जाति-भेद पर टिकी हों, या स्त्री को नीचा दिखाती हों, या बच्चों, पशुओं, वृद्ध-जनों, और अन्य निष्कवच प्राणियों के प्रति हिंसा दर्शाती हों, भाग्य, भविष्यवाणियों, भूत-प्रेत झाड़ने वालों की महिमा का बखान करती हों, इत्यादि। इस तरह के मुद्दों को लेकर प्रबुद्ध वर्ग में वर्षों से बहसें चलती आ रही हैं। पश्चिमी देशों में परीकथाओं को लेकर दो परस्पर विरोधी धारणाओं की चर्चा करना शायद यहाँ प्रासंगिक होगा।

बच्चों पर 'स्नो व्हाइट एण्ड सेवन ड्वार्फ्स', तथा 'लिटल रेड राइडिंग हुड' जैसी मुग्ध कर देने वाली कहानियों के प्रभाव को लेकर ब्रूनो बेटलहाइम बड़ी दक्षता से उन मनोवैज्ञानिक तत्वों का ज़िक्र करते हैं, जो इन कहानियों के साथ बच्चों के सम्बन्ध में क्रियाशील होते हैं। सम्मोहन के क्या-क्या उपयोग बच्चे के विकासशील मानस के लिए

ब्रूनो बेटलहाइम
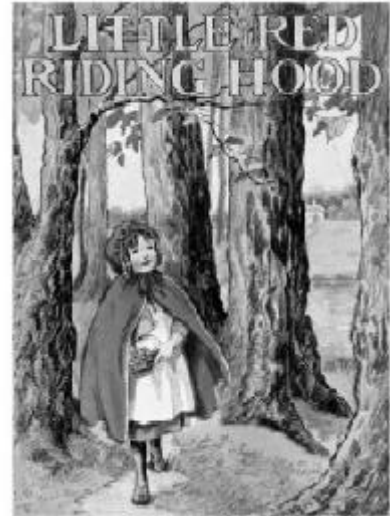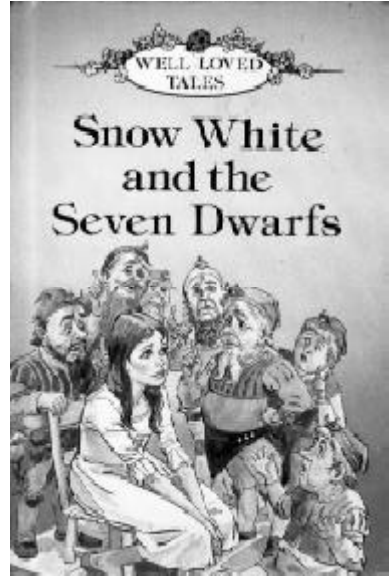
जिनमें मातृत्व या पितृत्व के लक्षण नहीं होते।

लेकिन परीकथाओं में अच्छाई-बुराई का असंदिग्ध चित्रण और अन्ततः निश्छलता या निष्कवचता की विजय लगभग बिना किसी अपवाद के एक तरह से परीकथा को परिभाषित करने वाले तत्व हैं। अपवाद-स्वरूप एक कहानी का हवाला दिया जा सकता है – 'नन्ही मत्स्यकन्या' जो उन्नीसवीं शती के सुप्रसिद्ध डेनी लेखक हांस क्रिस्टियन एण्डरसन की लिखी हुई है। इसमें एक सुन्दर मत्स्यकन्या किसी राजकुमार के प्रेम में मनुष्य बन ज़मीन पर रहने लगती है, और इस दैहिक रूपान्तरण में भयावह पीड़ा सहती है। लेकिन उस सहृदय राजकुमार का

हो सकते हैं, बेटलहाइम विस्तार से कई परीकथाओं का विश्लेषण करते हुए हमें बताते हैं। अपने आस-पास की दुनिया के दुखदायी तत्वों से ध्वस्त न हो जाना, अच्छाई-बुराई के शाश्वत युद्ध में अच्छाई का विजयी होना, कठिन मनोभाव जैसे बहन-भाई या प्रेमी जनों के बीच ईर्ष्या भाव, या फिर माता या पिता के कठोर व्यवहार से उत्पन्न भाव--परीकथाएँ कल्पना से यथार्थ की सम्मोहित कर देने वाली निर्मिति करती हैं। सौतेली माएँ वे नहीं हैं जिन्होंने बालक को जन्म नहीं दिया, हालाँकि कहानी में उन्हें ऐसा दर्शाया जाता है। सौतेली माएँ या सौतेले पिता वे हैं

हांस क्रिस्टियन एण्डरसन
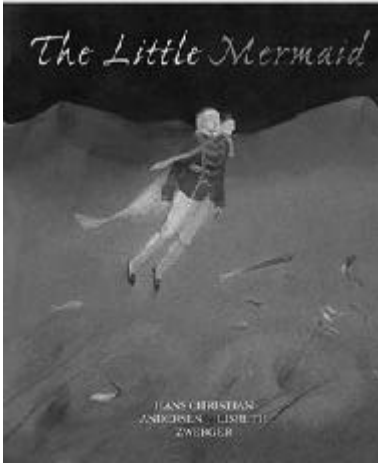
प्रेम न मिल पाने पर उस मत्स्यकन्या का त्रासदपूर्ण अन्त होता है।

परीकथाओं को लेकर बिलकुल नए ढंग से सोचने वाले लोगों में से एक जर्मन लेखक हैं यानूश। कहानी के मज़े को ज़रा भी कम किए बिना वे कहानियों के तत्वों को -- मसलन सम्मोहक राजकुमारियों के लिए शूरवीर प्रेमियों द्वारा असम्भव शर्तों को पूरा किया जाना, जानवरों का मनुष्यों से हेय होना -- उलट-पुलट कर कहानी को नए सिरे से लिख देते हैं। इस विनोदपूर्ण और हास्य से भरे पुनर्लेखन में कहानी का रस कहीं भी कम नहीं होता, और उलटबांसी का अनुभव कराने की लेखक की असंदिग्ध मंशा के बावजूद ऐसा नहीं होता कि कहानी की बानगी में कृत्रिमता झलकने लगे। जितना आनन्द मौलिक कहानी को पढ़ने में आता है, उतना ही इन नई कहानियों को पढ़ने में। अतिरिक्त मज़ा इसी बात में है कि नई कहानी मूल कहानी को कैसी विचित्र चिकौटी काटती है, लेकिन उसके महत्व को कम नहीं कर देती।

हम यानूश की कहानी 'शहज़ादा मेंढक' को ही लें। कहानी का 'हरा खूबसूरत शहज़ादा मेंढक' उसके प्रेम में पागल लड़की को हिकारत से देखता है – "उसकी टाँगे छोटी और थोड़ी ज़्यादा ही मोटी थीं और उसके बाल रस्सी जैसे थे"। लड़की जैसे-तैसे उसका पीछा करती हुई उसके जल निवास में आ पहुँचती है और उसकी तश्तरी से प्रेमपूर्वक खाने लगती है। "भोजन
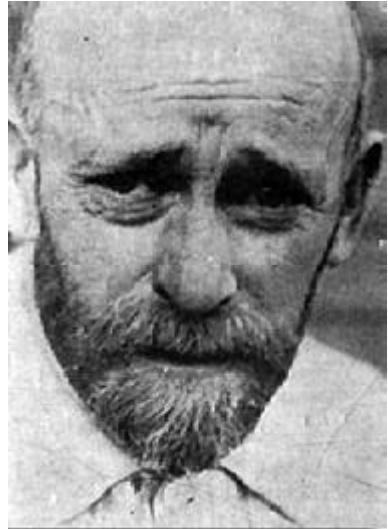
यानूश

वाकई मक्खी और मच्छर का सलाद था पर लड़की ने इसे इतने चाव से खाया जैसे दूध मलाई।" अन्ततः उसको पानी में डुबो डालने की मंशा से मेंढक उसे ज़बरदस्ती गोते लगवाता है तो लड़की एक सुन्दर हरी मेंढकी में बदल जाती है, जिसे श्रापवश मनुष्य बन कर जीना पड़ रहा था। यानी 'मेंढक राजकुमार' को औंधाकर बनी कहानी।

एक और कहानी 'हड्डी का गीत' में सुन्दर राजकुमारी असम्भव शर्तों को पूरा न कर पाने वाले उचित वर के अभाव में बूढ़ी होती जा रही थी। शुरू-शुरू में राजा का कहना था:"पहली बात तो हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि मेरी बेटी बहुत ही खूबसूरत है और दूसरी कि उसे मेरा पूरा राजपाट दहेज में मिलेगा। और तीसरी बात है कि मैं उसका पिता हूँ और मैं ही तय करूँगा।" शराब और जुए के मोह में एक नौजवान प्रेत-पर्वत पर स्थित भुतहे किले में रात बिताकर राजा की शर्त पर पूरा उतरना चाहता है। राजकुमारी में उसे कोई रुचि नहीं थी, शराब और जुए में थी। उसे इस बात की भी चिन्ता थी कि जुआ खेलने उसे उस किले में कौन मिलेगा। आखिरकार प्रेत-पर्वत के किले में सिरकटे प्रेत-ज़मींदार से अपना सिर दाँव पर लगाने की शर्त मंज़ूर कर वह हर रात जुआ खेलने लगता है। जैसे ही वह जीतने को होता है, भयावह प्रेतघड़ी समाप्त हो जाती है। उसकी उत्सुकता हर रात बढ़ती जाती है और वह प्रसन्न हुए राजा से बस एक और रात किले में रहने की मोहलत माँगता है। लेकिन अगली रात भी हड्डियों की गोटियों की बाज़ी में हार-जीत का फैसला नहीं हो पाता... ऐसा करते-करते कितना समय बीत गया, यह तो लेखक हमें नहीं बताता, लेकिन निश्चित ही, कहानी के अनुसार, इस बीच राजकुमारी बूढ़ी होकर मर चुकी होगी। 'पोलिटिकली करेक्ट' कहानियाँ रचने, सिरजने की प्रवृत्ति और प्रचलित कहानियों का पुनर्लेखन - बीसवीं शताब्दी में यह काम विभिन्न देशों में ज़ोरों-शोरों से हुआ है। मसलन, हम कुछ प्रबुद्ध वर्गों में प्रचलित 'आधुनिक सामाजिक सोच' के तईं गुज़रे हुए ज़माने के किस्से-कहानी को भी छान-छान कर पीने के
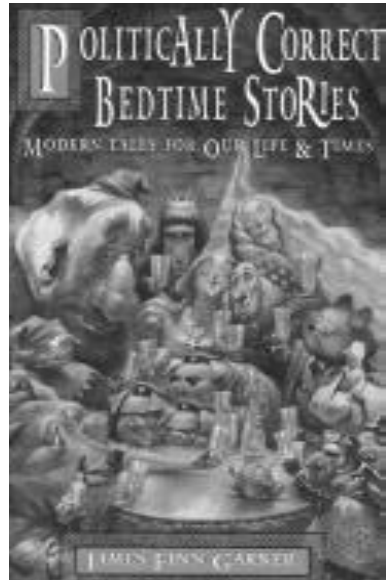
जेम्ज़ फिन्न गार्नर

अभ्यस्त हो रहे हैं।

यानूश ने कहानियों को इस तरह छेड़ा कि उनमें बिलकुल उसी जगह हास्य और व्यंग्य की रेखाएँ उभर आईं जहाँ-जहाँ समस्याओं को देखा जाता था। लेकिन इंग्लैण्ड के जेम्ज़ फिन्न गार्नर ने परीकथाओं को इस तरह प्रस्तुत किया है कि अब हास्य और व्यंग्य की ये रेखाएँ न सिर्फ समस्या-मूलक बिन्दुओं में उभर रही हैं, बल्कि पोलिटिकली करेक्ट लेखन की हास्यास्पद अति को भी भीषण मज़ाक का विषय बना लिया गया है। लेकिन यह दोहरी धार वाकई अद्‌भुत है। मसलन, *पोलिटिकली करेक्ट बेडटाइम स्टोरीज़* के ब्लर्ब पर घोषणा की गई है कि यह "लेखक की प्रोसेस की हुई पहली मृत वृक्ष-देह है"। और इस पुस्तक की भूमिका के इस उद्धरण पर गौर कीजिए:

> जब वे कहानियाँ पहली बार लिखी गई थीं जिन पर प्रस्तुत कहानियाँ आधारित हैं तो वे निश्चित ही अपना उद्‌देश्य पूरा करती थीं - पितृसत्ता की नींव जमाना, लोगों को उनकी नैसर्गिक भावनाओं से विमुख करना, 'बुराई' का राक्षसी-करण और वस्तुपरक 'अच्छाई' को 'पुरस्कृत' करना। हम चाहकर भी ग्रिम्म बन्धुओं को महिलाओं के अधिकारों के प्रति उदासीन नहीं मान सकते। इसी तरह हांस क्रिस्टियन एण्डरसन के कोपेनहेगन में मत्स्यकन्याओं के असंदिग्ध अधिकारों को लेकर शायद ही किसी ने सोचा हो।
>
> लेकिन आज हमें इस बात का सुअवसर प्राप्त है - और हम बाध्य हैं - कि इन 'क्लासिक' कहानियों को दोबारा सोचें ताकि वे हमारे इस प्रकाशमान समय को प्रति-बिम्बित कर सकें। यह विनम्र पुस्तक इसी प्रयास को समर्पित है... मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक अन्य लेखकों की न्यायपूर्ण कल्पनाशीलता को प्रेरित करेगी, और निश्चित ही बच्चों पर एक अमिट छाप छोड़ेगी।
>
> अगर भूलकर या भटककर मैंने लिंग, जाति, संस्कृति, राष्ट्र, अंचल,

आयु, शक्ल-सूरत, आकार, प्रजाति, बुद्धि, समाज या अर्थ-शास्त्र, लिंग-केन्द्रित, नर-नारी सम्बन्ध, या पितृसत्ता के सन्दर्भ में अपना कोई पूर्वाग्रह पहचाना न हो तो मैं आपसे क्षमा चाहूँगा और आपके सुझाव मिलने पर उचित भूल-सुधार करूँगा। किसी भी किस्म के पूर्वाग्रह से मुक्त अर्थपूर्ण साहित्य का विकास करने की खोज में, जो अपने दोषपूर्ण सांस्कृतिक अतीत से निजात पा चुका हो, निश्चित ही कुछ गलतियाँ तो मुझसे ज़रूर हुई होंगी।

डी.एच. लॉरेंस

परम्परागत कहानियों से और पुनर्लिखित कहानियों से परिहास करतीं ये नई कहानियाँ निश्चित ही एक नई परम्परा को जन्म दे रही हैं। बीसवीं शताब्दी में कई महत्वपूर्ण लेखकों-विचारकों ने सुन्दरता की पारम्परिक धारणाओं, मनुष्य-केन्द्रित सोच, मनुष्यतेर प्राणि-जगत के महत्व और उसकी स्वायत्तता इत्यादि विषयों पर गहन चिन्तन किया है। बाल और स्त्री अधिकार, वृद्ध जनों की देख-भाल, मनुष्य-जन्य परिस्थितियों में प्रकृति से लोप होती हुई प्रजातियों पर भी लगातार काफी सूक्ष्मता से सोचा-विचारा जा रहा है। लेकिन यहाँ उनके बारे में विस्तार से चर्चा करने की गुंजाइश नहीं है। इतना ज़रूर है कि सोच के इन रेशों की गुँथाई में जितनी कल्पनाशीलता नज़र आती है, उतनी ही इस बात की सम्भावना है कि ऐसी सोच के क्रमशः विकसित होने में साहित्य और अन्य कलाओं की भूमिका भी ज़रूर रही होगी। मनुष्य-केन्द्रित सोच की काट की यह बानगी डी.एच. लॉरेंस की एक नन्ही-सी कविता में देखिए:

मनुष्य उतना ही मनुष्य होता<br>
जितना कि छिपकली छिपकली<br>
तो वह ज़रूर देखने के लायक<br>
होता।

लॉरेंस 'मानसिक चेतना' के सख्त विरोधी थे और पहले विश्व-युद्ध से भयाक्रान्त होकर अपनी कृतियों में मनुष्य से रिक्त ऐसी पृथ्वी की कल्पना करने लगे थे जिस पर मीलों-मील हरी घास बिछी हो और अपने कान हिलाता एक खरगोश बैठा हुआ हो।

आधुनिक जीवन जिस हद तक

प्रकृति से निष्कासित होता चला आया है, उतनी ही शिद्दत से मनुष्य की कल्पना में निसर्ग अभाव दर्ज होता चला जा रहा है। किसी भी अभाव को महसूस करना मूलतः कवियों का काम रहा है। वॉल्ट विट्टमैन पलटकर पशुओं के बीच जाकर रहना चाहते थे। जो पहले से ही प्रकृतिस्थ है, उसकी कल्पना स्वयं को ऐसे व्यक्त क्यों करने लगी? लोक-कलाओं में भी क्या ऐसी कल्पना सम्भव है -- कि कोई कहे कि वह पलटकर पशुओं के बीच जाकर रहना चाहता है?
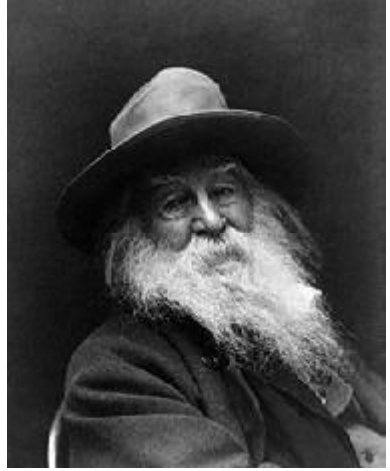
वॉल्ट विट्मैन

**तेजी ग्रोवरः** हिन्दी कवि, कथाकार एवं अनुवादक। बाल-साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में गहरी रुचि। पिछले कुछ वर्षों से चित्रकला भी कर रही हैं। कई वर्ष ज़िला होशंगाबाद में किशोर भारती नामक ग्रामीण संस्था में काम।

यह लेख इस विषय पर तेजी ग्रोवर द्वारा लिखे गए एक विस्तृत आलेख का एक हिस्सा है। इस आलेख का एक भाग हम संदर्भ अंक-59 में 'अक्कम से पुरम तक' के नाम से प्रकाशित कर चुके हैं।

मत्स्यकन्या